Toppersnotes
Unleash the topper in you

CGPSC

State Civil Services

Chhattisgarh Public Service Commission

(Preliminary & Main)

भाग - 6

दर्शनशास्त्र

SIERRA INNOVATIONS

CGPSC

CONTENTS

दर्शनशास्त्र

1.	दर्शन का स्वरूप	1
2.	वेद एवं उपनिषद्	10
3.	भारतीय दर्शन की मूलभूत विशेषताएँ	13
4.	जैन दर्शन	28
5.	न्याय का दर्शन	68
6.	वैषेशिक दर्शन	70
7.	सांख्य दर्शन	76
8.	वेदान्त संप्रदाय	90
9.	भारतीय विचारक	105
10.	पश्चिमी विचारक	130
11.	धर्मनिरपेक्षता	178
12.	धर्म–दर्शन	185
13.	नैतिक मूल्य और नैतिक दुविधा	204
14.	प्रशासन में नैतिक तत्व	208
15.	सूचना का अधिकार	211
16.	लोक सेवकों के लिए आचार संहिता	213
17.	भ्रष्टाचार	216

दर्शन का स्वरूप
(पाश्चात्य एवं भारतीय)

परम्परागत तौर पर जीवन और जगत को उसकी समग्रता में समझने का निष्पक्ष, बौद्धिक, सर्वांगीण समीक्षात्मक एवं मूल्यात्मक प्रयास ही दर्शन कहलाता हैं। अंग्रेजी का 'Philosophy' शब्द दो ग्रीक शब्दों 'Philos' और 'Sophia' से बना हैं । 'Philos' का अर्थ होता है – प्रेम (Love) या अनुराग। 'Sophia' का अर्थ होता है – ज्ञान या विद्या (Wisdom)। इस प्रकार 'फिलॉसफी' का शाब्दिक अर्थ है– 'ज्ञान के प्रति प्रेम' (Love of Wisdom)। यहॉ ज्ञान का आशय सत्य के ज्ञान से है।

पाश्चात्य दर्शन का प्रारम्भ जिज्ञासा से होता हैं। यह जिज्ञासा जीवन और जगत से सम्बन्धित कुछ मूलभूत प्रश्नों से सम्बन्धित है, जैसे जीवन और जगत का मूल तत्व एवं स्वरूप क्या हैं? जीवन का लक्ष्य क्या हैं? आदि।

अपने प्रारम्भिक अवस्था में दर्शन में जगत् की उत्पत्ति और उसके अंतिम लक्ष्य की खोज का प्रश्न मुख्यतः था। 15वीं–16वीं शताब्दी में बेकन के मार्गदर्शन में दर्शन को बौद्धिक आलोक मिला। डेकार्ट ने निश्चित एवं असंदिग्ध ज्ञान की प्राप्ति के लिये संदेह विधि का सहारा लिया। 20वीं षताब्दी में उभरी प्रबल विचारधारा तार्किक प्रत्यक्षवाद के अनुसार दर्शन का कार्य वैज्ञानिक कथनों का स्पष्टीकरण एवं विश्लेषण कर उसके वास्तविक अर्थ का निरूपण करना हैं। इनके अनुसार तत्वमीमांसा निरर्थक (Meaningless) हैं।

भारतीय दार्शनिक परम्परा में फिलोसोफी को 'दर्शन' कहा जाता हैं। यह शब्द संस्कृत भाशा के 'दृश' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है 'देखना' अर्थात् साक्षात् ज्ञान प्राप्त करना। इसलिए दर्शन का तात्पर्य है जिसके द्वारा देखा जाए अथवा साक्षात्कार किया जाएं (दृश्यते अनेन इति दर्शनम्) इस साक्षात् ज्ञान को ही भारतीय परम्परा में तत्वज्ञान कहा जाता हैं। साधारणतः 'देखने' का आशय चक्षु इन्द्रिय द्वारा देखने या पंचज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान से लिया जाता हैं। किन्तु यहॉ 'देखना' चक्षु इन्द्रिय के अतिरिक्त सूक्ष्म नेत्रों से भी हो सकता हैं। सूक्ष्म नेत्र जिसे दिव्य चक्षु, ज्ञान चक्षु या प्रज्ञा चक्षु या अंतर्आत्मा भी कहा गया हैं। स्थूल नेत्रों से जहॉ भौतिक पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होता है वहीं सूक्ष्म नेत्रों से सूक्ष्म आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति होती हैं। इस प्रकार 'दर्शन' का प्रयोग स्थूल एवं सूक्ष्म, भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों अर्थों में किया गया हैं। भारतीय मत के अनुसार लगभग सभी भारतीय दार्शनिक और दार्शनिक सम्प्रदाय परम तत्व के साक्षात्मकार को ही दर्शन मानते हैं। संक्षेप में, युक्तिपूर्वक तत्वज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न ही दर्शन हैं।

भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन में अन्तर

पाश्चात्य दर्शन	भारतीय दर्शन
• पाश्चात्य दर्शन की उत्पत्ति जिज्ञासा से हुई हैं। अतः पाश्चात्य दर्शन का लक्ष्य जिज्ञासा को शान्त कर बौद्धिक सन्तोश प्रदान करना हैं। यही कारण हैं कि पाश्चात्य दर्शन का विकास लम्बवत् हुआ हैं। यहॉ विभिन्न दार्शनिकों की कोई शिष्य परम्परा या सम्प्रदाय नहीं दिखाई देता हैं। उदाहरण स्वरूप – डेकार्ट, स्पिनोजा, लाइबनित्ज इत्यादि विचारक क्रमिक रूप से आते हैं और जीवन एवं जगत के सन्दर्भ में अपनी दृष्टि को प्रस्तुत कर जिज्ञासा की सन्तुष्टि का प्रयास करते हैं। • पाश्चात्य दार्शनिक कोई विषेश जीवन पद्धति या मार्ग का निर्धारण नहीं करते। • बुद्धि का महत्व अधिक है, आध्यात्मिक अनुभूति का कम हैं।	• भारतीय दर्शन की उत्पत्ति मात्र जिज्ञासा से नहीं अपितु एक व्यावहारिक समस्या से हुई है। यह समस्या है – जीवन और जगत में व्याप्त असीम दुख से छुटकारा पाना। यही कारण हैं कि भारतीय दर्शन का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति करना है, जहॉ दुःखों का पूर्ण विनाष हो जाता हैं। मोक्ष की प्राप्ति तभी होती है जब परम तत्व का साक्षात्मकार होता हैं। इसके लिए तद्नुरूप आचरण करना पड़ता हैं। विभिन्न दर्शन मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग बताते हैं। यहॉ विभिन्न दर्शनों की एक समानान्तर परम्परा है जिनके समर्थक हैं। खंडन–मंडन के क्रम में इन दर्शनों का विकास हुआ है एवं इनमें समृद्धि आई हैं। • प्रत्येक भारतीय दर्शन एक विषेश जीवन पद्धति को प्रस्तुत करता है जिसके अनुरूप आचरण कर सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती हैं। • आध्यात्मिक अनुभूति का महत्व अधिक है, यह अबौद्धिक न होकर अतिबौद्धिकता से सम्बन्धित हैं।

दर्शन का कार्य

(1) अस्तित्ववाद के अनुसार दर्शन का कार्य न तो जगत की व्याख्या करना है (विज्ञानवाद, भौतिकवाद, वस्तुवाद) और न ही उसमें परिवर्तन करना है (मार्क्सवाद)। इसका कार्य मनुष्य को जगत में साझीदार बनाना हैं।

(2) 20 वीं शताब्दी के एक मत तर्कीय प्रत्यक्षवाद के अनुसार दर्शनशास्त्र का कार्य

- विज्ञान को सुदृढ़ आधार प्रदान करना।
- तत्वमीमांसा का निरसन करना हैं।

दर्शन और जीवन

व्यक्ति के जीवन की दिशा उसके विचारों से संचालित एवं मार्गदर्शित होती हैं। बिना किसी ठोस वैचारिक आधार के जीवन में विश्रृंखलता एवं भटकाव की स्थिति आ जाती हैं। अतः आचरण में सामंजस्य एवं सद्भाव लाने के लिए विचारों में उत्कृष्टता एवं सामंजस्य का होना आवश्यक हैं। विचारों में सामंजस्य तभी सम्भव हैं जब उसकी आधारषिला के रूप में जीवन और जगत के विषय में सम्यक्, उत्प्रेरक एवं सुदृढ सिद्धान्त प्रस्तुत हों। सिद्धान्त जीवन के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण को स्थिर करते है और उसकी क्रियाओं के मध्य एक संतुलन एवं सामंजस्य स्थापित करते हैं। विचारों के निर्माण में दर्शन की महती भूमिका हैं। यह जीवन–दिशा निर्धारित करता हैं।

अरस्तू के अनुसार मानव–जीवन के दो पहलू हैं। पहला पशुत्व और दूसरा विचारशीलता। इनमें से दूसरा पहलू प्रधान हैं। शारीरिक पक्ष की संतुष्टि एवं उपभोग के सन्दर्भ में पशु और मानव में समरूपता हैं। परन्तु पशु और मनुष्य में विचारशीलता के स्तर पर वास्तविक गुणात्मक भेद उभर कर सामने आ जाता हैं। विचारशील पक्ष मनुष्य को एक सार्थक मानव जीवन व्यतीत करने एवं जीवन एवं जगत के सच्चे स्वरूप को जानकर उनके प्रति अपना एक दृश्टिकोण बनाने में मदद करता हैं। स्पष्ट है कि जीवन से दर्शन का सीधा एवं अनिवार्य सम्बन्ध हैं।

मानव जीवन में दर्शन की आवश्यकता

- राधाकृष्णन् के अनुसार दर्शन का मुख्य लक्ष्य निर्माणात्मक एवं सृजनात्मक हैं। सच्च दर्शन मानव–जाति को असत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, असंतोष से संतोष की ओर ले जाता हैं। इस रूप में यह जीवन के उपयोगी हैं।
- मानव–जीवन दर्शन के बिना असम्भव है क्योंकि दर्शन मानव का स्वभाव या मूल प्रवृत्ति हैं। दर्शन या दार्शनिक प्रवृत्ति ही मानव की पहचान हैं। मानव एक विवकेशील प्राणी हैं। उसकी विवेकशीलता उसके चिन्तन या दर्शन में स्पष्ट रूप से प्रकट होती हैं। मानव का दर्शन उसके जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करता हैं। मानव का जीवन अकेला नहीं है अपितु वह समाज का एक अंग हैं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से दर्शन सम्पूर्ण समाज को एवं सामाजिक जीवन को प्रभावित करता हैं। समाज में होने वाले परिवर्ततनों, संशोधनों, सामाजिक सुधारों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं कुरीतियों के विरोध में दर्शन की प्रासंगिता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं।
- प्रत्येक व्यक्ति का एक जीवन–दर्शन होता है जिसके आधार पर वह जीवन जीता हैं। जिसके जीवन–दर्शन में स्पष्टत, वैचारिक संगति, वास्तविकता एवं मूल्यात्मक पक्ष अधिक होता है, उसका जीवन व्यवस्थित एवं खुशहाल होता हैं।
- दर्शन की एक शाखा नीतिशास्त्र मानव आचरण के आदर्श की मीमांसा करती है, ताकि उसके आधार पर मनुष्य के कर्तव्य–अकर्तव्य और उसके कर्मो के औचित्य– अनौचित्य का निर्धारण किया जा सके। दूसरे शब्दों में जीवन में क्या उचित है, क्या अनुचित है, हमें क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए, इसकी शिक्षा नीतिशास्त्र प्रदान करता हैं। यह परोक्ष रूप से जीवन के विभिन्न पक्षों यथा – धर्म, राजनीति, अर्थशास्त्र, शिक्षा, विधि आदि के सन्दर्भ में उचित एवं अनुचित की धारणा के आधार पर मार्गदर्शक का काम करता हैं । इस प्रकार नीतिशास्त्र मनुष्य के नैतिक उत्थान तथा विचारों एवं जीवन के परिष्करण में सहायक हैं।
- दर्शन का हमारे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवन पर प्रभाव पड़ता हैं। विभिन्न राजनैतिक शासन पद्धतियॉ विविध दार्शनिक दृष्टिकोण का परिणाम हैं।

  उदाहरणस्वरूप – जनतंत्र – वाद का मूल 'मानव–मात्र में समानता' का दार्शनिक दृष्टिकोण हैं। राजतंत्र–वाद का मूल राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानना हैं। मार्क्स और गांधी के आर्थिक विचारों में आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की स्थापना के उपाया बताये गये हैं। इसी प्रकार व्यक्ति और राज्य के सम्बन्ध, व्यक्ति–व्यक्ति के मध्य सम्बन्ध कैसा होना चाहिए, इसकी शिक्षा भी दर्शन प्रदान करता हैं।
- शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक समृद्धि में योग–दर्शन की भूमिका निर्विवाद हैं।
- दर्शन सांस्कृतिक जीवन के सभी पहलुओं (जैसे–नृत्य, संगीत, कला, साहित्य आदि) को प्रभावित करता हैं। उदाहरणस्वरूप भारतीय दर्शन मूल रूप से आध्यात्मिक हैं। परिणामस्वरूप भारतीय संगीत, नृत्य, कला और साहित्य में भी आध्यात्मिकता के प्रति रूझान दिखाई देता हैं।
- अस्तित्ववाद, मानववाद आदि का प्रभाव भी मानव जीवन पर दिखाई देता हैं।
- दर्शन हमारी चिन्तन शक्ति को विकसित करता है तथा गहनतम विशयों पर भी संगत एवं तार्किक रूप से विचार–विमर्श करने की शक्ति प्रदान करता हैं।
- दर्शन हमें मानवीय मूल्यों के प्रति सचेत कर हमें सच्चा मानव बनाने की चेष्टा करता हैं।
- दार्शनिक चिन्तक मानवीय व्यक्तित्व के पथ–प्रदर्शक का काम करता हैं।
- दार्शनिक चिन्तन मनुष्य को अतिवाद से मुक्त करता हैं।

आक्षेप

(1) दर्शन केवल बुद्धि विलास या मानसिक व्यायाम (Intellectual Gymnasium) है, व्यावहारिक जीवन एवं उसकी समस्याओं से इसका संबंध नही हैं। दर्शन जीवन की तात्कालिक आवष्यकताएं जैसे – रोटी, कपड़ा, मकान, इत्यादि का कोई व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत नहीं करता।
(2) दर्शन गूढ़ तथ्यात्मक समस्याओं के समाधान के लिए परिकल्पना (speculation) का सहारा लेता है परन्तु इन समस्याओं का वास्तविक हल नहीं निकल सकता।
(3) दर्शनशास्त्र का संबंध मुख्यतः अमूर्त्त चिन्तन एवं अलौकिक बातों से हैं।
(4) समकालीन युग में तार्किक भाववादी तत्वमीमांसा को निरर्थक बताते हैं।

मूल्यांकन

(1) यह सही है कि दर्शन मनुष्य की तात्कालिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में विशेष बात नहीं करता है परन्तु सार्थक मानव जीवन कैसे व्यतीत किया जाये, इसकी शिक्षा अवश्य देता हैं। इस रूप में दर्शन मानवीय जवीन और अनुभूति के गुणात्मक विकास का उपकरण हैं।
(2) बड़े सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों के पीछे दार्शनिक चिन्तन का ही हाथ रहा हैं। जब कोई विचारक विश्व और जीवन के प्रति नवीन दृष्टिकोण स्थापित करता है तो उसका प्रभाव समाज, राजनीति एवं अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता हैं। मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, बेन्थम एवं मिल का उपयोगितावादी दृष्टिकोण, रॉल्स का न्याय सिद्धान्त आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।
(3) वर्तमान समाज में जब मूल्यविहीन भोतिक प्रगति, धर्म के विकृत रूप, स्वार्थ–लोलुपता, भौतिकवादी प्रवृत्ति के प्रसार के कारण परस्पर वैमनस्य, कटुता, शोषण, अत्याचार बढ़ रहे हैं, वैसी स्थिति में जीवन में सुव्यवस्था लाने के लिए, जीवन के स्वस्थ्य मूल्यों को पुनः जागृत कर, उन्हें युगानुकूल बनाकर समाज के समक्ष प्रस्तुत करने में दर्षन की भूमिका महत्वपूर्ण एवं अपरिहार्य हैं । ऐसा करने पर ही जीवन की अशांति मिट सकती हैं।

स्पष्ट है कि दर्शन के बिना अर्थपूर्ण, गरिमापूर्ण, आनन्दपूर्ण मानव जीवन सम्भव नहीं हैं। दर्शन के अभाव में मानव जीवन पशुतुल्य हो जायेगा।

दर्शन और विज्ञान

परम्परागत रूप से ऐसा कहा जा सकता है कि दर्शन जीवन और जगत के प्रारम्भ एवं अन्त या लक्ष्य को जानने का एक निश्पक्ष, सर्वांगीण, समीक्षात्मक एवं बौद्धिक प्रयास हैं । अर्वाचीन विचारधारा के अनुसार दर्शन सम्प्रत्ययों का तार्किक विश्लेषण है । जबकि दूसरी और विज्ञान मानवीय ज्ञान की एक विशिष्ट शाखा है जिसमें विश्व के भिन्न – भिन्न अंगो का युक्तिपूर्ण विवेचन होता हैं । एक विषेश विज्ञान किसी क्षेत्र विषेश का ही अध्ययन करता हैं। उदाहरणस्वरूप–भौतिक विज्ञान का विषय भौतिक जगत है जबकि जीव विज्ञान का विषय जीव जगत। स्पष्ट है कि जहां दर्शन समग्र विश्व का सामान्य (general) अध्ययन करता है वहीं विज्ञान विश्व के किसी एक खास विभाग का विशिष्ट (specialized) अध्ययन करता हैं।

दर्शन और विज्ञान में अन्य अंतर

- प्रत्येक विज्ञान विश्व के किसी एक क्षेत्र विशष्ज्ञ का अध्ययन करता हैं। जबकि दर्शन का क्षेत्र संपूर्ण विश्व हैं। इसी कारण दर्शन की व्याख्या वैज्ञानिक व्याख्या से अधिक व्यापक होती हैं। स्पेन्सर के अनुसार – विज्ञान अंषतः एकीकृत ज्ञान है जबकि दर्शन पूर्णतया एकीकृत ज्ञान हैं। दर्शन सबसे अधिक सामान्य कोटि का ज्ञान है। वह यह ज्ञान है जो विज्ञानों द्वारा दिए गए कथनों को एक समष्टि रूप में एकताबद्ध कर देता हैं।
- दर्शन की प्रकृति चिन्तनात्मक है जबकि विज्ञान की प्रकृति प्रयोगात्मक हैं।

- विज्ञान ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जाने गये विषय, जिनका अनुभव और परीक्षण हो सकता है, तब सीमित है। जबकि दर्शन ज्ञानेन्द्रियों से परे के क्षेत्रों पर भी विवेचना करता हैं, जैसे – कर्म–नियम, मूल्य, मोक्ष इत्यादि।
- विज्ञान 'क्या' और 'कैसे' की व्याख्या करता हैं। जबकि दर्शन 'क्यों' की भी व्याख्या करता हैं।
- विज्ञान कुछ मान्यताओं पर आधारित हैं। दर्शन में इन मान्यताओं की भी समीक्षा की जाती हैं।
- विज्ञान का संबंध सत्य से है, जबकि दर्शन का संबंध सत्य,शुभ और सोन्दर्य तीनों से हैं।
- विज्ञान वर्णनात्मक एवं तथ्यपरक होता हैं। दर्शन में मूल्यात्मक पक्ष प्रबल हैं।
- विज्ञान में धर्म की निंदा का भाव प्रधान है, जबकि दर्शन में धर्म की निंदा नहीं, अपितु उसमें निहित सत्यता को जानने का प्रयास किया जाता हैं।

समानता

- दर्शन और विज्ञान दोनों की उत्पत्ति जीवन और जगत् के प्रति आश्चर्य और संदेह की भावना से हुई हैं।
- दर्शन और विज्ञान दोनों में आगमन और निगमन, संश्लेषण एवं विश्लेषण की विधियों का प्रयोग किया जाता हैं।
- दोनों का लक्ष्य सत्य की खोज है, निश्चित एवं यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति करना है तथा सार्वभौमक नियमों की स्थापना का प्रयास करना हैं।

दर्शन और विज्ञान एक–दूसरे के पूरक हैं

कुछ अन्तरों के होते हुए भी विज्ञान और दर्शन में निकट का सम्बन्ध हैं। दोनों एक दूसरे के अध्ययन में सहायक हैं। वास्तव में वे एक दूसरे के पूरक हैं।

(A)दर्शन विज्ञान के लिये उपयोगी है –

- विज्ञान की मान्यताओं का विवेचन कर दर्शन वैज्ञानिक अध्ययन की नींव को मजबूत करता हैं।
- समकालीन पाश्चात्य दर्शन विशेष रूप से वैज्ञानिक अवधारणाओं के विश्लेषण और स्पष्टीकरण की बात करता है तथा विज्ञान को अधिक सुग्राह्म बनाता हैं। यही कारण है कि विज्ञान– दर्शन (Philosophy of Science) दर्शन का एक प्रमुख अंग बन गया हैं।
- दर्शन वैज्ञानिक निष्कर्षों मे समन्वय स्थापित कर उनमें सर्वांगीणता लाता है और समूचे विश्व के प्रसंग में उसकी अर्थपूर्णता निर्धारित करता हैं।
- दर्शन ने विज्ञान को कुछ ऐसी पूर्व–कल्पनाएँ (Hypothesisi) प्रदान किए जिन पर प्रायोगिक जॉच कर विज्ञान ने कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांतों को जन्म दिया हैं। उदाहरणस्वरूप परमाणु सिद्धान्त।
- दर्शन की परिकल्पनात्मक पद्धति (Speculative method) का उपयोग अब विज्ञान में भी हो रहा हैं। भौतिक विज्ञान अपने उच्चतर स्तर पर परिकल्पनात्मक दर्शन का रूप ले चुका हैं। आज उसके अन्दर परिकल्पना और प्रयोग साथ–साथ चल रहे हैं।
- दर्शन समस्त विज्ञानों की जननी हैं। दर्शन के क्षेत्र में जैसे–जैसे निष्चित निष्कर्ष मिलते गए और जो प्रायोगिक जॉचों पर खरे उतरे, वैसे–वैसे क्रमिक रूप से विज्ञानों का जन्म एवं विकास हुआ और वे दर्शन से अलग होते गए। वर्तमान में दर्शन के अन्दर जो विचार–विमर्श चल रहा है वे भी भविष्य के नए विज्ञानों की विषय–वस्तु ही हैं।

(B) विज्ञान दर्शन के लिए उपयोगी है –

- दर्शन जिस विश्व का ज्ञान ढूढता है उसी विश्व के भिन्न – भिन्न अंगो का ज्ञान विज्ञानों का साध्य हैं। अतः विज्ञानों की प्रगति और खोजों का प्रभाव दर्शन पर पड़ता हैं
- अंधविश्वास, पूर्वाग्रह को दूर करने में।
- मूल तत्व के स्वरूप के संबंध में दार्शनिक विवादों के निपटारें में।
- जीव–विज्ञाान तथा वनस्पति विज्ञान संबंधी खोजों ने विकासवादी अवधारणा की पुष्टि की जिससे दार्शनिक विश्व की उत्पत्ति के प्रश्न पर विकासवाद की ओर उन्मुख हुए।

धर्म और विज्ञान में अंतर

धर्म	विज्ञान
1. धर्म मूलतः आस्था एवं विश्वास पर आधारित हैं।	1. विज्ञान आनुभविक निरीक्षण एवं परीक्षण पर आधारित हैं।
2. धर्म का संबंध अलौकिक सत्ता एवं आदर्शों से हैं।	2. विज्ञान का संबंध लौकिक घटनाओं से हैं।
3. आत्मनिष्ठ ज्ञान की प्राप्ति।	3. वस्तुनिष्ठ ज्ञान की प्राप्ति।
4. धर्म में व्यक्तिगतता होती है अर्थात् धार्मिक ज्ञान का हम व्यक्तिगत परीक्षण कर सकते हैं। (सार्वजनिक परीक्षण नहीं।)	4. विज्ञान में सार्वजनिकता होती हैं। इसमें हम वैज्ञानिक ज्ञान का सार्वजनिक परीक्षण करते हैं ।
5. मान्य विश्वास।	5. परीक्षित विश्वास।
6. दैव–प्रकाशना, रहस्यानुभूति आदि पर आधारित।	6. अनुभाविक तथ्यों पर आधारित हैं।
7. तर्कबुद्धि द्वितीय स्तर पर।	7. विज्ञान में तर्कबुद्धि की प्राथमिकता पाई जाती हैं।
8. 'श्रद्धावान लभते, संशयात्मा विनश्यति' अर्थात् जो ईश्वर में श्रद्धा रखते, उन्हें वह प्राप्त हो जाता है और जो संशय रखते है, उनका विनाश हो जाता हैं।	8. 'संशयात्मा लभतेः, श्रद्धावान विनशयित।' जो संशय करता है उसे प्राप्ति होती है जबकि जो श्रद्धावान है, वह विनष्ट हो जाता हैं
9. धर्म में 'हम लोग' और 'वे लोग' की बात उभरते हैं।	9. विज्ञान में सबके लिए की बात होती हैं।
10. सामान्यतः संशोधन स्वीकार्य नहीं।	10. विज्ञान में आवश्यकतानुसार संशोधन स्वीकार्य हैं।

फ्रांसीसी दार्शनिक कोम्टे के अनुसार – 'दर्शन विज्ञानों का विज्ञान हैं।' समकालीन पाश्चात्य दार्शनिक रसेल के अनुसार – ''दर्शन विज्ञान के आधारभूत सिद्धांतों का तार्किक अध्ययन हैं।'' वर्तमान युग में प्रतिष्ठित वैज्ञानिक भी अब यह मानने लगे हैं कि वैज्ञानिक चिन्तन की अन्तिम परिणति दर्शन में ही होती हैं।

दर्शन एवं धर्म में अन्तर

- दर्शन प्रमाण एवं तर्कबुद्धि पर आधारित है, जबकि धर्म में आस्था और विश्वास प्रधान हैं।
- दर्शन निष्पक्ष एवं तटस्थ अध्ययन पर जोर देता है, जबकि धर्म का दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण होता हैं।
- दर्शन का उद्देश्य विश्व की व्याख्या करना, सत्य का ज्ञान प्राप्त करना हैं। जबकि धर्म का उद्देश्य आध्यात्मिक मूल्यों की वास्तविक सिद्धि हैं।
- दर्शन विभिन्न धर्मों अथवा अनेक धर्मों में समाविष्ट सामान्य सिद्धांतों की भी खोज करता है, जबकि प्रत्येक धर्म इसी एक विशेष विश्वास पद्धति से सम्बद्ध होता है और उसी पद्धति विशेष के अध्ययन से संतुष्ट भी रहता हैं।
- दर्शन की उत्पत्ति जिज्ञासा से, बुद्धि की मांग से होती है, जबकि धर्म की उत्पत्ति आध्यात्मिक भूख से होती हैं। आध्यात्मिक भूख भावनात्मक (emotional) होती हैं।
- दर्शन में तार्किक विधि का आश्रय लिया जाता है, जबकि धर्म में ज्ञान, श्रद्धा, भक्ति को विशेष महत्व दिया जाता हैं।

दर्शन और धर्म में सम्बन्ध

यद्यपि दर्शन और धर्म कई सन्दर्भों में एक दूसरे से भिन्न हैं फिर भी वे एक–दूसरे से निकटता रखते हैं ।

- दोनों का सम्बन्ध विश्व के कुछ आधारभूत प्रश्नों से होता हैं।
- दोनों का लक्ष्य परमार्थ सत्ता की खोज हैं।
- दर्शन धर्म की समीक्षात्मक विवेचना करता है, परिणामस्वरूप धर्म अंधविश्वास एवं रूढ़िवादिता से मुक्त हो जाता हैं।
- दर्शन धर्म की दार्शनिक पृष्ठभूमि को सबलता प्रदान करता है। धर्म– दर्शन का एक विभाग है जिसमें धार्मिक विश्वासों की तार्किक समीक्षा की जाती हैं। परिणामस्वरूप धार्मिक विश्वासों को संगत एवं युगानुकुल बनाने में मदद मिलती हैं।
- ब्रेड़ले, बर्गेसा, राधाकृष्णन आदि का मानना है कि धर्म अन्तः प्रज्ञात्मक अथवा रहस्यात्मक अनुभूतियों के आधार पर चरम सत्ता के स्वरूप की एक झॉकी प्रस्तुत करता हैं। इसी के आधार पर तर्क एवं बुद्धि का सहारा लेकर एक विश्व दृष्टि निर्धारित करने का काम दर्शन करता हैं।

भारतीय सन्दर्भ

- भारतीय सन्दर्भ में दर्शन और धर्म में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं । जीवन में व्याप्त दुःखों और समस्याओं से ही भारत में दर्शन और धर्म दोनों की उत्पत्ति होती हैं । यहॉ दोनों का लक्ष्य व्यावहारिक हैं – ''जीवन के दुखों से छुटकारा पाना ।''
- यही कारण है कि भारतीय सन्दर्भ में दर्शन और धर्म में प्रारम्भ से ही एकात्म रहा हैं ।

दर्शन और संस्कृति

संस्कृति क्या हैं ?

शाब्दिक रूप से 'संस्कृति' शब्द की उत्पत्ति 'संस्कृत' से हुई हैं। संस्कृत का अर्थ है – परिष्कृत। अतः 'संस्कृति' का सम्बन्ध ऐसे तत्वों से है जो व्यक्ति का परिष्कार कर सकें । एक अन्य व्याख्या के अनुसार 'संस्कृति' शब्द संस्कार से बना हैं। संस्कार का अर्थ है – 'शुद्धि की प्रक्रिया'। यहॉ शुद्धि का अर्थ सामाजिकता से हैं। आशय है कि व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी बनाने में जितने भी तत्वों का योगदान होता है, उन सभी तत्वों की व्यवस्था का नाम ही संस्कृति हैं। यह मानव के विचारों एवं व्यवहारों के प्रतिमान को इंगित करती हैं।

नैतिक दृष्टिकोणों से संस्कृति सुन्दर वस्तुओं के आनन्द, मानवीय दृष्टि से मूल्यवान ज्ञान और समूहों द्वारा मान्य उचित सिद्धान्तों से सम्बन्धि है।

टाइलर के अनुसार – ''संस्कृति समग्र का एक संकुल है, जिसमें ज्ञान, विश्वासय, कला, नैतिक शिक्षा, कानून, रीति–रिवाज तथा अन्य क्षमताओं एवं आदतों का समावेश रहता हैं और जिसे व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता हैं।''

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि संस्कृति मनुष्यों के समग्र जीवन का एक तरीका है, यह मनुष्य के सामाजिक व्यवहारों को निश्चित करती है और जीवन के आदर्श और सिद्धान्तों को प्रकाश देती हैं। संस्कृति के द्वारा निर्धारित संस्कारों के माध्यम से ही समाजीकरण एवं मानवीकरण होता हैं। संस्कृति की निम्नलिखित विशेषतायें हैं –

- संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार हैं।
- संस्कृति में हस्तांतरित होने का गुण हैं।

- संस्कृति एक संग्रहित ज्ञान है जिसमें संशोधनों एवं संकलनों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जाता हैं।
- संस्कृति गतिशील हैं।
- संस्कृति समूह का आदर्श होती हैं।
- संस्कृति में सामाजिकता, अनुकूलता एवं आवश्यकता पूर्ति का गुण हैं।
- प्रत्येक समाज की संस्कृति अलग–अलग होती हैं।

सभ्यता का अर्थ

मैकाइबर एवं पेज के अनुसार – ''सभ्यता से हमारा अर्थ अपने जीवन की दशाओं को नियंत्रित करने के लिए मानव द्वारा नियोजित सम्पूर्ण संगठन एवं यांत्रिकता से हैं।'' सभ्यता का सम्बन्ध ऐसे सभी पदार्थों से है जिनको मूर्त रूप से देखा जा सके, जो पदार्थ हमें अपनी विरासत में मिलते हैं तथा जिसे हम अपनी आवश्यकता के अनुसार निर्माण करते हैं।

सभ्यता की विशेषताएँ

- सभ्यता प्रमुख रूप से संस्कृति का भौतिक पक्ष हैं।
- सभ्यता के अन्तर्गत आने वाली वस्तुएं हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन हैं।
- पदार्थ निर्माण की तकनीक भी सभ्यता में सम्मिलित हैं।
- सभ्यता एक परिवर्तनशील अवधारणा हैं।
- सभ्यता के अनुपयोगी अंग को प्रायः व्यक्ति त्याग देता हैं।

सभ्यता और संस्कृति में अन्तर

(1) सभ्यता की माप सम्भव है परन्तु संस्कृति की नहीं। सभ्यता का सम्बन्ध उपयोगिता के क्षेत्र से है जबकि संस्कृति का मूल्यों के क्षेत्र से हैं। हम विभिन्न भौतिक वस्तुओं की उपयोगिता का माप करके यह बता सकते हैं कि कौन अधिक उपयोगी है या कौन कम उपयोगी हैं। दूसरी ओर, संस्कृति की श्रेष्ठता या निम्नता का कोई मापक नहीं हैं।
(2) सभ्यता सदा प्रगति करती है किन्तु संस्कृति नहीं।
(3) सभ्यता को बिना किसी परिवर्तन के प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु संस्कृति को नहीं।
(4) संस्कृति साध्य है जबकि सभ्यता साधन हैं।

इन अन्तरों के होते हुए भी सभ्यता और संस्कृति में सम्बन्ध हैं। इस सम्बन्धों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता हैं –

(1) सभ्यता संस्कृति की वाहिका हैं।
(2) सभ्यता सांस्कृतिक क्रियाओं को शक्ति प्रदान करती हैं।
(3) सभ्यता संस्कृति का पर्यावरण हैं।
(4) संस्कृति सभ्यता की दिशा को प्रभावित करती हैं।

वस्तुतः सभ्यता और संस्कृति दोनों मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया के कार्य या परिणाम हैं। जब यह क्रिया उपयोगी लक्ष्य की ओर गतिमान होती है तब सभ्यता का जन्म होता है और जब मूल्य – चेतना को प्रबुद्ध करने की ओर अग्रसर होती है तब संस्कृति का उदय होता हैं।

लोकप्रिय दृष्टि से संस्कृति के भौतिक पक्ष जैसे वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों को सभ्यता कहा जाता है और सामाजिक समूह की अभौतिक उच्च उपलब्धियों को जिनमें कला, संगीत, साहित्य, दर्शन, धर्म और विज्ञान सम्मिलित होते है, को संस्कृति कहा जाता हैं।

दर्शन का संस्कृति पर प्रभाव

प्रत्येक राष्ट्रीय समाज की अपनी एक संस्कृति होती हैं। यह संस्कृति उसके साहित्य, कला, संगीत, नाटक, रीति–रिवाज आदि में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। समाज या राष्ट्र की संस्कृति दर्शन से पूर्णतया प्रभावित होती हैं। यह प्रभाव निम्न रूपों में देखा जा सकता हैं –

(1) दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुरूप ही समातज या राष्ट्र की संस्कृति का निर्माण होता हैं। विभिन्न संस्कृतियों यथा – भौतिकवाद, आध्यात्मवादी, बुद्धिवादी, रहस्यवादी, अद्वैतवादी आदि के अन्तर का कारण एवं आधार विभिन्न दार्शनिक दृश्टिकोण ही हैं। उदाहरणस्वरूप – भारतीय संस्कृति मूलतः आध्यात्मिक हैं क्योंकि भारतीय दर्शन मूलतः आध्यात्मिक (अपवाद–चार्वाक) हैं।

(2) किसी भी संस्कृति की बुनियादी मान्यताओं का सम्बन्ध दर्शनशास्त्र की विषयवस्तु से होता हैं। दर्शन संस्कृति की इन मूल मान्यताओं को तर्कबुद्धि की कसौटी पर कसता हैं। इस प्रकार दर्शन संस्कृति के आधार को तर्कसंत एवं सुदृढ़ बनाता हैं।

(3) दर्शन संस्कृति के मार्गदर्शक एवं संरक्षक का काम करता हैं। दर्शन ही संस्कृति के स्वरूप एवं दिशा का निर्धारण करता हैं। जब संस्कृति पर आघात् होता है, तो दर्शन ही उसके मूल्यात्मक, रचनात्मक, संवेगात्मक तथा उपयोगितापरक पक्षों को उभारकर उसकी रक्षा करता है और उसे नये प्रगतिशील मूल्यों से युक्त करता हैं।

(4) दर्शन संस्कृति का प्राण हैं। दार्शनिक साहित्य ही किसी देश की संस्कृति के वास्तविक प्रतीक होते हैं।

(5) दर्शन का सम्बन्ध तर्कषास्त्र, नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, तत्व विज्ञान आदि से होता हैं। यहॉ सर्वागीण एवं समीक्षात्मक दृष्टिकोण को महत्व दिया जाता हैं। परिणामस्वरूप संस्कृति में भी समन्वयात्मक दृष्टिकोण एवं महनतम रहस्यों को व्यापकता में समझने की अन्तर्दृष्टि का विकास होता हैं।

वास्तव में दर्शन और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं।

दर्षन विचारों, आदर्षों व चिन्तन प्रक्रियाओं का संगठित रूप हैं। संस्कृति इसी प्रक्रिया का इतिहास हैं।

संस्कृति एक स्थिर प्रतिमान हैं। दर्षन उसकी विवेचना करके उसे परिपक्व एवं सम्पन्न बनाता है। दर्शन सांस्कृतिक परिवर्तन का बौद्धिक पहलु हैं।

वेद एवं उपनिषद्

वेद का अर्थ

1. वेद का सामान्य अर्थ है – ज्ञान या विद्या। चूँकि परंपरानुसार ये ज्ञान के भण्डार है, इसीलिए इन्हें वेद कहा गया हैं।
2. 'वेद' शब्द ज्ञानार्थक विद् धातु से बना है जिसका अर्थ है – ज्ञान।

'वेद' संबंधित परिभाषाएँ

1. वेदों के भाष्यकार आचार्य सायण के अनुसार वेद वह है जो अभीष्ट की प्राप्ति एवम् अनिष्ट को दूर करने के अलौकिक उपाय का ज्ञान देता हैं।
2. वेद पुरूषार्थ का अलौकिक उपाय बताने वाला स्त्रोत हैं।
3. ''वेद भारतीय साहित्य एवं धर्म का प्राचीनतम अभिलेख है'' – ओल्डनबर्ग
4. मनुस्मृति के अनुसार – ''सभी धर्मों का आधार वेद हैं। '' यहाँ 'धर्म' का आशय कर्तव्यों एवं मूल्यों से हैं।
5. महर्षि दयानन्द के अनुसार – ''वेद ज्ञान–विज्ञान के भण्ड़ार हैं। सभी सतय विद्याओं का मूल वेदों में विद्यमन है। वेद वह ज्ञान है, जिससे जीवन में सभी को महान् लाभ प्राप्त होता है। यह महान् लाभ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के रूप में प्राप्त होता हैं। वेदों से ईश्वर, जीव और प्रकृति का सम्यक् बोध होता हैं।''

वेद का महत्व

1. सर्वहित ज्ञान का भण्ड़ार हैं।
2. जो प्रत्यक्ष एवम् अनुमान प्रमाण द्वारा नहीं जाना जा सकता है उसे हम वेद से जान सकते हैं।
3. वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं जिसमें प्राचीनतम मानव के चिन्तन निहित हैं ।
4. मनुस्मृति में कहा गया हैं – ''नास्तिको वेद निन्दकः''। इस रूप में वेद आस्तिक व नास्तिक के वर्गीकरण का मुख्य आधार हैं।
5. भारतीय दर्शन के मूल तत्व इसमें पाए जाते हैं। इसे भारतीय धार्मिक चिन्तन का मूल स्त्रोत कहा जा सकता हैं।
6. भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्राचीनतम साक्ष्य इसमें निहित हैं।

ऋत् की अवधारणा

शाब्दिक अर्थ है – उचित या सही अथवा नैतिक सद्मार्गी। वस्तुतः ऋत् वह नियम है जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड संचालित होता हैं। यह व्यवस्था का नियम हैं। ऋत् का पालन प्रकृति के सभी अवयव, देवी–देवता भी करते हैं ।

ऋत के तीन आयाम या क्षेत्र हैं

1. प्राकृतिक नियम–वेदों में ऋत का प्रारंभिक अर्थ था – वस्तुओं के मार्ग का नियमन। आशय है कि ब्रह्माण्ड के सभी पिण्ड अपने–अपने क्षेत्र में नियमित रूप से गतिशील हैं। इस रूप में ऋत् का अर्थ विश्व की व्यवस्था एवं सामंजस्य से हैं।
2. नैतिक नियम – इस रूप में ऋत् सदाचार के मार्ग को बताता है जिसका अनुसरण मनुष्य को करना चाहिए। इस रूप में यह नैतिक व्यवस्था को इंति करता हैं। ऋत् के इस नियम में ही कर्म नियम का बीज छुपा हुआ हैं।
   - कर्मनियम – अच्छे कर्मों का अच्छा व बुरे कर्मों का बुरा फल अवश्य मिलता हैं।
   - कृत प्रणाश – किए गए कर्म फल का नष्ट हो जाना।
   - अकृतभ्युपगम – बिना किए गए कर्मों के फल को प्राप्त कर लेना।
   - कर्मनियम के अनुसार कृतप्रणाश व अकृतभ्युपगम नहीं होता हैं।

3. कर्मकाण्ड़ नियम – इस रूप में ऋत धार्मिक क्रियाओं के नियम को बताता हैं।
   - ऋत का संचालक व संरक्षक वरूण देवता हैं। इन्हें वेदों में (गोपा ऋतस्य) ऋत का संरक्षक कहा गया हैं। वरूण संसार के प्राकृतिक एवम् नैतिक नियमों के संरक्षक हैं।
   - ऋतजात – सभी देवी – देवता ऋत से संबंधित हैं। सभी इसे स्वीकार करते हैं। इसके अनुसार आचरण करते हैं। इसलिए देवताओं को ऋतजात कहा गया हैं।
   - ऋतः ऋत जगत् की शाश्वत, अलंघनीय प्राकृतिक व नैतिक व्यवस्था का नाम है, जिसके संचालक एवं सरंक्षक वरूण हैं।

उपनिषद्

उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ – 'उपनिषद्' शब्द 'उप' (निकट), 'नि' (नीचे) और 'सद्' (बैठना) से मिलकर बना है, अर्थात् नीचे निकट बैठना।

शिष्य का गुरू के समीप उससे निम्न आसन पर श्रद्धापूर्वक, ध्यानपूर्वक परमतत्व संबंधी गूढ़ उपदेश सुनने के लिए बैठना।

- रचनाक्रम के अनुसार समस्त वैदिक साहित्य के अन्त में आने वाली ज्ञान प्रधान रचनाओं की ही विशिष्ट संज्ञा उपनिषद् हैं।
- पाल डायसन के अनुसार उपनिशद् का अर्थ 'रहस्यमय उपदेश' हैं।
- शंकर के अनुसार उपनिषद् से आशय ऐसे ब्रह्म ज्ञान से है जिससे अज्ञान का नाश होता हैं।

उपनिषदों की संख्या – मुक्तिकोपनिषद ये उपनिषदों की संख्या 108 बतायी गई हैं। जिनमें 11 महत्वपूर्ण है जिन पर शंकर ने भाश्य लिखा हैं। ये हैं – ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड़क, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, श्वेताश्वर।

- सबसे प्राचीन उपनिषद् छान्दोग्य व वृहदारण्यक उपनिषद् हैं।

उपनिजदों का महत्व – 1. भारतीय दर्शन का मूल स्त्रोत हैं। 2. वेदान्त की प्रस्थानत्रयी में उपनिषद् मूल प्रस्थान हैं।

प्रस्थानत्रयी – उपनिषद्, गीता व ब्रह्मसूत्र को प्रस्थानत्रयी कहा जाता हैं।

ब्रह्म – सूत्र – उपनिषद् का सूत्रबद्ध, श्रृंखलाबद्ध संकलन हैं। इसकी रचयिता वादरायण हैं।

गीता – उपनिषदों का सार गीता हैं।

1. उपनिषद् कालक्रम से या कालिक दृष्टिकोण से वैदिककाल के अंत में आते हैं।
2. वेदों के अन्तिम भाग उपनिषद् है, इसलिए इन्हें उपनिषद् कहते हैं।

   वेद → संहिता → ब्राह्मण → आरण्यक → उपनिषद्
3. वैदिक ज्ञान का अन्त या पर्यवसान ब्रह्म – ज्ञान के रूप में होता हैं। चूंकि उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म – ज्ञान ही है, इसलिए इन्हें वेदान्त कहा जाता हैं।
4. वैदिक ज्ञान का निचोड़ या सार उपनिषदों में निहित है, इसलिए इन्हें वेदान्त कहा जाता हैं।
   वेदों के अन्तिम भाग या वेदों के सार या वैदिक ज्ञान की चरम परिणति (अन्त या पर्यवसान) ब्रह्म–ज्ञान में होने के कारण उपनिषदों को वेदान्त कहा जाता हैं।

उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म विचार – उपनिषदों में परम सत्य, परमतत्व, परमज्योति को ब्रह्म कहा गया हैं। ब्रह्म शब्द 'वृह' धातु से बना है जिसका अर्थ है ''बढ़ना और विस्तृत होना'' चूँकि परम तत्व वृहत्तम अर्थात सर्वव्यापक है, इसलिए इसे 'ब्रह्म' कहा गया हैं।

ब्रह्म ही वह तत्व है जिससे समस्त जड़चेतनमय पदार्थ उत्पन्न होते है, जिसमें ये अन्ततः लीन होते है और जिस पर इनका अस्तित्व निर्भर करता हैं। उपनिषदों में कहा गया हैं। ''सर्व खलु इदं ब्रह्म'' अर्थात यह सब कुछ ब्रह्म ही हैं।

वेद बनाम उपनिषद् (वेद से उपनिषद् तक के विकास के क्रम में निम्नलिखित परिवर्तन दिखाई देते हैं)–

(1) वेद में यज्ञ एवं कर्मकाण्ड की प्रधानता हैं। उपनिषदों में ज्ञानात्मक पक्ष प्रबल हैं।
(2) संहिता तथा ब्राह्मण में अर्थात् वेदों के प्रारंभिक भाग में यज्ञ की विधियों का वर्णन हैं। उपनिषदों में गम्भीर तात्विक विवेचन है, परमतत्व के अन्वेषण का प्रयास हैं।
(3) वेदों में बहिर्मुखी प्रवृत्ति प्रबल हैं। यहॉ प्रकृति के विभिन्न रूप उपासना के विषय हैं उपनिषदों में प्रवृत्ति अन्तर्मुखी है। यहा प्रकृति की बजाय आत्मा को केन्द्र माना गया हैं। अतः वेदों की प्रार्थना एवं कर्मकाण्ड का स्थान उपनिषदों में श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन ने ले लिया हैं।
(4) वेदों में प्रारंभ में प्रेय मार्ग की प्रधानता हैं। अर्थात् वैदिक लोग भौतिक सुखें एवं ऐश्वर्यों की कामना करते हैं। उपनिषदों में श्रेय मार्ग की प्रधानता हैं। यहॉ आत्मा की आनन्द प्राप्ति पर जोर हैं।

प्रश्न : ''असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय।''– इसका आशय क्या हैं ?
उत्तर : वृहदारण्यक उपनिषद् (1:3.27) से लिये गये उपरोक्त कथन का आशय हैं कि – ''मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो, और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो।''

उपनिषद् भारतीय दर्शन के मूल आधार हैं

उपनिषद् भारतीय दर्शनों के मूल स्त्रोत हैं। जो भारतीय दर्शन वेद की प्रामाणिकता को स्वीकार करते है, वे सभी उपनिषदों को वेद–प्रामाण्य के अंतर्गत मानते हैं। यद्यपि चार्वाक, जैन और बौद्ध वेद की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करते, फिर भी इनके दर्शनों की भी मूलभूत बातें उपनिषदों में दिखायी देती हैं ।

1. चार्वाक दर्शन का भौतिकवाद उपनिषद् के दार्शनिक विरोचन का दर्शन हैं।
2. उपनिषदों में सत्य, तप, वैराग्य, ब्रह्मचर्य, उपरिग्रह, अस्तेय एवं अहिंसा के विवेचन हैं जो जैन आचारशास्त्र के मूल हैं।
3. बौद्ध दर्शन के प्रथम आर्य सत्य 'सर्वम् दुःखम्' एवं अनात्मवाद की झलक कठोपनिषद् में दिखायी देती हैं।
4. 'श्वेताश्वर' एवं 'कठोपनिषद्' में सांख्य–योग दर्शन संबंधी विवेचना हैं। सांख्यदर्शन की प्रकृति का उल्लेख श्वेताश्वर उपनिषद् में प्राप्त होता हैं। यहॉ सर्वप्रथम 'सांख्य' शब्द का प्रयोग किया गया हैं । यहॉ प्रकृति को सत्व, रज् एवं तम गुणों से युक्त कहा गया हैं।
5. कठोपनिषद् का योग–विवेचन पतंजलि के योग–सूत्र का मूल स्त्रोत हैं।
6. न्याय–वैशेषिक दर्शन के ज्ञज्ञन सिद्धान्त एवं परमाणुवाद के बीज भी उपनिषों में दिखाई देते हैं।
7. वेदान्त दर्शन का मूल ग्रंभ 'ब्रह्मसूत्र' उपनिषदो के दर्शन का सार हैं। वादरायण रचित 'ब्रह्मसूत्र' में उपनिषद् के ही विचारों को व्यवस्थित एवं सुसंबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया हैं।
8. उपनिषदों का सार गीता हैं। इस प्रकार उपनिष्ज्ञद्, ब्रह्मसूत्र एवं गीता (प्रस्थानत्रयी) के भाष्यों से ही वेदान्त के विभिन्न संप्रदायों का विकास हुआ हैं।
9. उपनिषदों में कर्म काण्ड, उपासना – काण्ड एवं ज्ञान – काण्ड की विवेचना है जिसका विवरण विभिन्न दर्शनों में दिखाई देता हैं।

भारतीय दर्शन की मूलभूत विशेषताएँ

यद्यपि विभिन्न भारतीय दर्शनों की उत्पत्ति विभिन्न कालों एवं परिस्थितियों में हुई है फिर भी एक ही देश में उत्पन्न होने के कारण उन पर भारतीय संस्कृति की छाप दिखाई देती हैं। परिणामस्वरूप उनमें कुछ इस साम्यता भी दिखाई देती हैं । इस साम्यता को भारतीय दर्शन की सामान्य विशेषताओं के रूप में जाना जाता हैं।

1. कर्म – नियम या कर्मवाद में विश्वास – कर्म – नियम के अनुसार शुभ कर्मों का शुभ फल और अशुभ कर्मों का अशुभ फल कर्त्ता का अवश्य मिलता हैं। इसका सामान्य आशय है – जो जैसा बोयेगा वह वैसा काटेगा। कर्म–नियम के अनुसार हमारा वर्तमान जीवन अतीत जीवन के कर्मो का फल हैं और भविष्य जीवन वर्तमान जीवन के कर्मा का फल होगा। यह कर्म–नियम कारण–कर्य सिद्धांत का ही धर्म और नैतिकता के क्षेत्र में किया गया प्रयोग हैं। इस प्रकार कर्म–नियम के माध्यम से अतीत, वर्तमान एवं भविष्य जीवन को कारण कार्य–श्रृंखला में बांधा गया है (अपवाद चार्वाक)।
2. भारतीय दर्शन पुरूषार्थ साधन के लिए है – भारतीय दर्शन यह मानता है कि दर्शन का उद्देश्य मानसिक कौतूहल की निवृत्ति मात्र नहीं है बल्कि जीवन के लक्ष्य को समझने के लिए दर्शन का अनुगमन आवश्यक हैं। यहॉ चार पुरूषार्थ स्वीकृत हैं। जिनमें नैतिक पक्ष के साथ–साथ जीवन के शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक पक्ष की संतुष्टि का भाव निहित हैं। धर्म से नैतिक पक्ष समृद्ध होता है, अर्थ और काम से शारीरिक एवं मानसिक पक्ष संतुष्ट होता हैं। जबकि मोक्ष से आध्यात्मिक पक्ष की संतुष्टि होती हैं। इस प्रकार भारतीय दर्शन की प्रकृति समन्वयवादी हैं। इसमें व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास का भाव निहित हैं।
3. प्रत्येक भारतीय दर्शन एक जीवन पद्धति को इंगित करता हैं। भारतीय दर्शन का जीवन से घनिष्ठ संबंध हैं। यहॉ यह बताया गया है कि जीवन से दुःख को कैसे दूर किया जाय और शान्ति और आनन्द की प्राप्ति की जाय। यहॉ दर्शन केवल सोचने की पद्धति न होकर जीवन पद्धति हैं। इस रूप में दर्शन साधन है और जीवन से दुःखों की निवृत्ति ही इसका साध्य हैं।
4. भारतीय दर्शन ऋषि–मुनियों द्वारा प्रतिपादित दर्शन हैं। प्रत्येक दर्शन के अपने विशिष्ट ग्रंथ हैं। गुरू–शिष्य परम्परा से यह अग्रसरित होता रहा हैं। इन विभिन्न भारतीय दर्शनों का विकास 'खण्डन–मण्डन' प्रक्रिया से हुआ हैं। इसमें पर–पक्ष का खंड़न और स्व–पक्ष का मंडन होता है तथा विपक्षियों द्वारा उठाई गई आपत्तियों, उनके उत्तर, कुछ संशोधन आदि का क्रम चलता रहता हैं।
5. अज्ञान बंधन का मूल कारण हैं। यहॉ बंधन का आशय है – जीवन में दुःखों की विद्यमानता तथा जन्म–मरण चक्र की विद्यमानता। यहॉ बंधन को दूर करने तथा मोक्ष प्राप्ति हेतु विभिन्न मार्गों अर्थात् ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग की विवेचना की गयी हैं।
6. चार्वाक को छोड़कर सभी दर्शन पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा में विश्वास करते हैं। पूर्वजन्म का आशय अतीत जीवन से है, जबकि पुनर्जन्म भविष्य जीवन से संबंधित हैं। पुनर्जन्म का आशय हैं – पुनः जन्म ग्रहण करना। मृत्यु जीवन का अंत नहीं बल्कि शरीर का अंत हैं।
7. चार्वाक और बौद्ध को छोड़कर सभी दर्शन आत्मा की अमरता में विश्वास करते हैं। इनके अनुसार शरीर के विनाश के बाद भी आत्मा विनष्ट नहीं होती। आत्मा नित्य एवं अविनाशी हैं। अपने कर्मों का फल भोगने के लिए बारम्बार जन्म ग्रहण करती हैं।
8. प्रमाणवाद– सभी भारतीय दर्शनों में प्रमाणों का निरूपण किया गया है क्योंकि किसी वस्तु या प्रमेय (ज्ञेय) की सिद्धि प्रमाणों के अभाव में नहीं हो सकती। यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति का साधन ही प्रमाण कहलाता हैं। न्याय– दर्शन में इसकी विशद विवेचना की गयी हैं।
9. कार्यकारणवाद – इसके अनुसार प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य होता हैं। लगभग सभी दर्शनों में कारणता सिद्धांत की विवेचना की गयी हैं। विभिन्न दर्शनों में मतभेद का एक मुख्य कारण उनका कारण – कार्य संबंधी मत हैं।

10. चार्वाक दर्शन को छोड़कर सभी दर्शनों में मोक्ष जीवन का चरम आध्यात्मिक लक्ष्य स्वीकार किया गया हैं। यहॉ मोक्ष का आशय है – जीवन से दुःखों की समाप्ति तथा जन्म–मरण चक्र की समाप्ति। मोक्ष को ही विभिन्न दर्शनों में निर्वाण, कैवल्य, अपवर्ग आदि रूपों में वर्णित किया गया हैं।
11. विभिन्न भारतीय दर्शनों में आत्म संयम, नैतिक अनुशासन, जगत की शाश्वत् नैतिक व्यवस्था ;ऋत्द्ध आदि में विश्वास दिखाई देता हैं।
12. विभिन्न भारतीय दर्शनों को एक नैतिक रंगमंच की भॉति स्वीकार किया गया हैं। इसके अनुसार संसार एक रंगमंच की भॉति जिसमें विभिन्न मनुष्यों को अपनी योग्यतानुसार कर्म करने का अवसर मिलता हैं। मनुष्य से आशा की जाती है कि वह अपना कर्म नैतिक ढंग से संपादित करे जिससे उसका वर्तमान तथा भविष्य सुखमय हों।

विभिन्न आक्षेप एवं प्रत्युत्तर

क्या भारतीय दर्शन निराशावादी हैं – निराशावाद मन की वह प्रवृति है जो जीवन को दुःखमय/विपादमय समझती हैं। कुछ विचारक (अलबर्ट श्वाइट्जर जैसे पाश्चात्य चिंतक) भारतीय दर्शन पर निराशावादी होने का आक्षेप लगाते हैं क्योंकि यहॉ आरम्भ में दुःखों की विवेचना की गयी हैं।

परन्तु हम केवल आरम्भ के दृष्टिकोण से या सीमित दृष्टिकोण से ही भारतीय दर्शन को निराशावादी कह सकते हैं। भारतीय दर्शन अपनी पूर्णता में या अन्तिम रूप में निराशावादी न होकर आशावादी है क्योंकि यहॉ प्रत्येक दर्शन में दुःखों को दूर करने का उपाया बताया गया हैं। इसका सारांश महात्मा बुद्ध के चार आर्य–सत्यों में पाया जाता हैं। ये चार आर्य सत्य हैं –

(1) दुःख हैं।
(2) दुःख का कारण हैं।
(3) दुःख का निरोध हैं।
(4) दुःख – निरोध का मार्ग हैं।

क्या भारतीय दर्शन पलायनवादी है – चार्वाक को छोड़कर विभिन्न भारतीय दर्शनों में लौकिक जगत या सांसारिक पक्ष को कम महत्व दिया गया हैं। यहॉ जगत से आसक्ति छोड़ने की बात की गयी हैं। यहॉ संसार को क्लेशयुक्त बताकर उससे मुक्ति की कामना की गयी हैं। उदाहरणस्वरूप – शंकर के दर्शन में अन्ततः जगत को मिथ्या माना गया हैं।

इस आक्षेप को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया जा सकता। भारतीय दर्शन में त्याग भावना से विषयों के उपभोग की बात की गयी हैं। पुनः वस्तुवादी दर्शन जगत की वास्तविक सत्ता को स्वीकार करते हैं। यहॉ केवल विषयों के अंधाधुंध उपभोग के बजाए आत्म–संयम की बात की गयी हैं। पुनः महायान के बोधिसत्व, गीता के स्थित–प्रज्ञ या कर्मयोगी तथा विभिन्न दर्शनों में स्वीकृत जीवन मुक्ति की अवधारणा इस तथ्य की पुष्टि करती है कि भारतीय दर्शन पलायनवादी नहीं हैं बल्कि वर्तमान जीवन के दुःखों को दूर कर शाश्वत् आनन्द और ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करती हैं। बोधिसत्व एवं गीता का स्थितप्रज्ञ लोक–कल्याण की मंगल भावना से ओतप्रोत हैं। पुनः नव्य वेदान्त में जगत् को सत् माना गया हैं तथा व्यक्तिगत मोक्ष के स्थान पर सर्वगत कल्याण के लक्ष्य पर बल दिया गया हैं।

भारतीय दर्शन का वर्गीकरण

भारत के दार्शनिक सम्प्रदायों को वेदों के आधार पर दो वर्गों में बॉटा जा सकता हैं । ये दो वर्ग हैं – आस्तिक और नास्तिक । भारतीय विचारधारा में आस्तिक से आशय उनसे है जो वेदों (श्रुति) की प्रामाणिकता को स्वीकार करते हैं जबकि नास्तिक से आशय वेदों (श्रुति) की प्रामाणिकता को नहीं मानने वालों से हैं । इस दृष्टिकोण से छह भारतीय दर्शनों को आस्तिक दर्शन (वैदिक दर्शन) कहते हैं । ये हैं –

(1) न्याय
(2) वैशेषिक
(3) सांख्य
(4) योग
(5) मीमांसा और
(6) वेदान्त।

इन दर्शनों को 'षड्दर्शन' कहा जाता हैं। ये दर्शन किसी न किसी रूप से श्रुति पर आधारित हैं। इनमें भी मीमांसा और वेदान्त पूर्णतः वैदिक दर्शन हैं। नास्तिक दर्शन तीन हैं। ये हैं –

(1) चार्वाक
(2) जैन और
(3) बौद्ध।

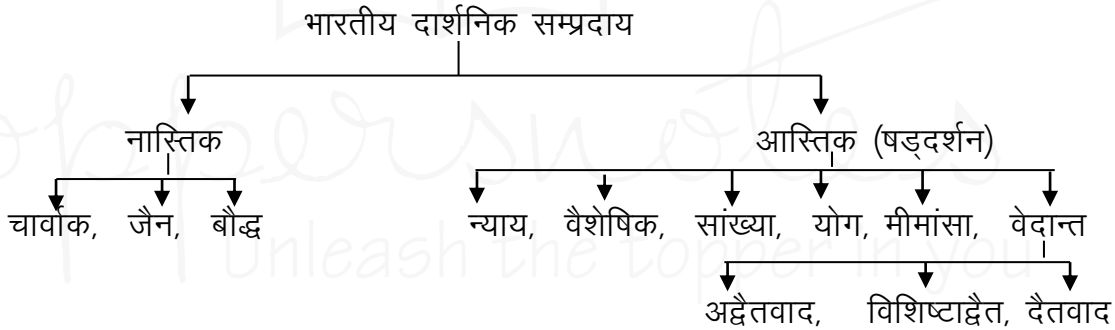

- ईश्वर को मानने वाले ईश्वरवादी – न्याय, वैशेषिक, योग, वेदान्त।
- ईश्वर को नहीं मानने वाले अनीश्वरवादी – सांख्य, मीमांसा, चार्वाक, बौद्ध, जैन।
- आस्तिक परन्तु अनिश्वरवादी दर्शन – सांख्य, मीमांसा

भारतीय दर्शन में प्रमाणें की स्थिति

विभिन्न दर्शन	संख्या	(i)	(ii)	(iii)	(iv)	(v)	(vi)
चार्वाक दर्शन	1.	प्रत्यक्ष					
बौद्ध दर्शन एवं वैशेषिक दर्शन	2.	प्रत्यक्ष	अनुमान				
जैऩसांख्य़जैमिनि़रामानुज	3.	प्रत्यक्ष	अनुमान	शब्द			
न्याय दर्शन	4.	प्रत्यक्ष	अनुमान	शब्द	उपमान		
प्रभाकर (मीमांसक)	5.	प्रत्यक्ष	अनुमान	शब्द	उपमान	अर्थापत्ति	
कुमारिल भट्ट (मीमांसक) . शंकराचार्य	6.	प्रत्यक्ष	अनुमान	शब्द	उपमान	अर्थापत्ति	अनुपलब्धि

प्रश्न : चार्वाक कितने पुरूषार्थ मानता हैं ?

उत्तर : चार्वाक दर्शनानुसार दो पुरूषार्थ स्वीकार्य हैं जिनमें परम पुरूषार्थ या साध्य काम है तथा अर्थ उसकी प्राप्ति का साधान हैं। यहॉ धर्म और मोक्ष का निशेध हैं।

प्रश्न : चार्वाक की नैतिक विचारधारा/नीतिशास्त्रीय या आचारशास्त्रीय विचार क्या हैं ?
उत्तर : चार्वाक नैतिकता के दृष्टिकोण से इहलौकिक, निकृष्ट, स्वार्थवादी, सुखवादी है जिसमें शारीरिक सुख–भोग अर्थात् काम को ही परम पुरूषार्थ माना गया हैं तथा अर्थ साधन के रूप में स्वीकृत किया हैं।

प्रश्न : चार्वाक द्वारा अनुमान प्रमाण का खण्ड़न कैसे करते हैं ?
उत्तर : दृष्ट हेतु (धूम) को देखकर अदृष्ट साध्य (अग्नि) का ज्ञान ही अनुमान हैं। इस अनुमान का तार्किक आधार व्याप्ति हैं। चूँकि इस व्याप्ति की निश्चयात्मक सिद्धि संभव नहीं हैं, अतः अनुमान भी प्रमाण नहीं हैं। व्याप्ति की सिद्धि प्रत्यक्ष से करने पर अवैध सामान्यीकरण का दोष, अनुमान, शब्द एवं कारणता सिद्धान्त से करने पर चक्रक दोष की स्थिति उत्पन्न होती हैं। पुनः व्याप्ति की अनौपाधिकता (शर्तरहितता) की सिद्धि संभव नहीं हैं । अतः अनुमान प्रमाण नही हैं। यह वस्तुतः हमारी मानसिक आदत का परिणाम हैं।

प्रश्न : चार्वाक दर्शन कारण संबंध के विषय में क्या विचार रखता हैं ?
उत्तर : चार्वाक मतानुसार कारण व कार्य में कोई अनिवार्य एवं सार्वभौम संबंध नहीं हैं। जड़ तत्वों में निहित स्वभाव से ही कार्य की उत्पत्ति हो जाती है (स्वभाववाद)। कार्य जड़ तत्वों के आकस्मिक संयोग का परिणाम हैं (आकस्मिकतावाद)।

ज्ञानमीमांसा या ज्ञान का सिद्धान्त (Theory of Knowledge) या प्रमाण–विचार / प्रमाण मीमांसा

चार्वाक दर्शन में ज्ञानमीमांसा प्राथमिक हैं। चार्वाक सर्वप्रथम ज्ञान की मीमांसा करते हैं, और तत्पश्चात् अपने ज्ञानमीमांसीय मान्यताओं के आधार पर तत्वमीमांसा एवं नीतिशास्त्र को स्थापित करते हैं।

ज्ञानमीमांसा → तत्वमीमांसा → नीतिशास्त्र
ज्ञानमीमांसा का एक मुख्य प्रश्न यह है कि हमारे यथार्थ ज्ञान का साधन क्या हैं ? भारतीय दर्शन में यथार्थ ज्ञान (प्रमा) के साधन को प्रमाण कहा गया हैं। दूसरे शब्दों में, जिस साधन के द्वारा प्रमाता (ज्ञाता) प्रमेय (ज्ञेष) का ज्ञान प्राप्त करता है, उसे प्रमाण कहते हैं। विभिन्न दर्शनों में प्रमाणों की संख्या के संदर्भ में मतभेद हैं। चार्वाक विभिन्न प्रमाणों में से केवल प्रत्यक्ष को प्रमाण के रूप में स्वीकार करता है तथा अन्य प्रमाणें (अनुमान, शब्द आदि) की प्रामाणिकता का खंड़न करता हैं।

चार्वाक की ज्ञानमीमांसा के दो पक्ष हैं –
(1) भावात्मक पक्ष : इसके अंतर्गत चार्वाक प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण (यथार्थ ज्ञान–प्राप्ति के साधन) के रूप में स्वीकार करते हैं।
(2) निशेधात्मक पक्ष : इसके अंतर्गत अनुमान, शब्द आदि प्रमाणें की प्रामाणिकता का खंड़न करते हैं।
ज्ञानमीमांसा की दृष्टि से चार्वाक प्रत्यक्षवादी है अर्थात् चार्वाक मत में प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण हैं। (प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्) यथार्थ ज्ञान प्राप्ति के साधन या स्त्रोत के रूप में चार्वाक केवल प्रत्यक्ष को स्वीकार करते हैं। जो ज्ञान इन्द्रिय और विषय (अर्थ) के सन्निकर्ष से उत्पन्न होता है उसे प्रत्यक्ष कहा जाता हैं। चूँकि ज्ञानेन्द्रियॉ पॉच हैं। इसलिए यहॉ पंचविध इन्द्रिय प्रत्यक्ष स्वीकार किया गया हैं।

चार्वाक द्वारा प्रत्यक्ष को ही एकमात्र प्रमाण मानने का कारण इस प्रमाण में विद्यमान विश्वसनीयता, अभ्रान्तता एवं निश्चयात्मकता है जो प्रत्यक्षेत्तर (प्रत्यक्ष से भिन्न) प्रमाणों में सम्भव नहीं हैं। यही कारण है कि चार्वाक अनुमान, शब्द आदि अन्य प्रमाणों की प्रामाणिकता का खण्ड़न करते हैं। अन्य प्रमाणों के खण्ड़न के लिये दिये गये तर्क ही प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण सिद्ध करने के आधार बनते हैं।